

आर्पण



— १३४५५५ —

राष्ट्रमन्त्री संत श्री रामदासजी महाराज
श्री गंगाधारा, मुम्बई, जेष्ठ

श्री गणेशाय नमः

अर्पण

अखण्डकोटि ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा की असीम कृपा, प्रकृति के हर विहंगम दृश्य में परिलक्षित होती है। ये नीला आकाश, उसमें कतारबद्ध विचरण करते खंगवृन्द ये ऊँचे वृक्ष उस पर कूजती कोयल की स्वर लहरी, ऐसा लगता है मानो सभी अपने अपने तरीकों से सर्व शक्तिमान का वंदन कर रहे हैं।

कहा जाता है, कि संसार दुःखमय है लेकिन यह सच है कि संसार सुखमय है। क्योंकि यह संसार, यह जीवन सच्चिदानंद धन स्वरूप का अंश है। जब अंशी आनंद स्वरूप ही है तब अंश में दुःख कैसा। आवश्यकता है सुख के अनुभूत होने की, एवं उसे चिरस्थायी बनाने की। वास्तव में इस चिरस्थायी आनंद की प्राप्ति ही परमात्मा की सच्ची उपासना है। जरूरत है आनंद के मार्ग को तलाशने की। आनंद अन्तःकरण की वह शान्त अवस्था है जिसमें कोई उद्वेग कोई आवेग कोई विकार नहीं है। ऐसे निर्मल अन्तःकरण में ही परमात्मा का प्रतिबिम्ब उतर सकता है। सच्चाई तो यह है कि सभी लोग आनंदमय ही हैं लेकिन इसे माया का प्रभाव कहें या कर्मबन्धन, कि व्यक्ति अपने आप को भुला बैठता है यदि व्यक्ति अपने स्वरूप को पहचान ले तो स्वतः ही वह परमात्मा से एकाकार हो सकता है।

संस्कार

यह सम्पूर्ण सृष्टि (संसार) त्रिगुणात्मक है और मानव प्रकृति भी त्रिगुणात्मक है। त्रिगुणमयी प्रकृति से ऊपर उठना यानि गुणातीत बनना ही आत्म साक्षात्कार एवं प्रभु पद को प्राप्त करना है। गुण का अर्थ रस्सी भी होता है। इन तीन गुणों ने हमारे अन्तःकरण को जकड़ा हुआ है और इसी

कारण हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाते हैं। आत्मानंद के इस स्वच्छन्द अनंत आकाश में विहार करने के लिए हमें गुणों (रस्सी) से मुक्त होना होगा। गुण-मुक्त अन्तःकरण में ही परमात्मा विराजते हैं। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम तमोगुण (क्रोध) का परित्याग अर्थात् दूसरों से प्रतिकूल आचरण होने पर भी क्रोध नहीं करना। यह पाप की प्रतिध्वनि है।

“जित क्रोधेन सर्वे हि जगतेतद्विजीयते”

उतेजितन होना द्वेष न रखना जैसे सामने की दीवार पर फेंकी गयी गेंद लौट कर फेंकने वाले के पास ही आती है वैसे क्रोध में कही गयी बातें लौटकर हमारे पास ही आती हैं।

मन, कर्म एवं वचन से भी किसी का अहित क्यों करें। सदैव यह मानकर चले कि अनुकूलता प्रभु का प्रसाद है एवं प्रतिकूलता प्रभु की प्रताड़ना। अनुकूलता हो तो ये विचार मन में अवश्य लावें कि प्रभु दयालु है जो उन्होंने, हमें अपने तुच्छ कर्मों का भी इतना सुन्दर प्रतिफल प्रदान किया है। और प्रतिकूलता होने पर प्रभु को धन्यवाद दें कि वे कितने क्षमाशील जो उन्होंने हमें अपनी गलतियों का बोध कराया। प्रभु ही सबसे बड़ा न्यायाधीश है। सिर्फ हमारे कर्म ही सुख एवं दुख के रूप में परिलक्षित होते हैं। अपेक्षा ही दुख का कारण है और दुख क्रोध को उत्पन्न करता है। हम यदि कभी किसी से अपेक्षा करेंगे ही नहीं तो प्रतिकूलता का प्रश्न ही पैदा नहीं होगा। घर, बाहर समाज, यहाँ तक परमात्मा से भी कोई अपेक्षा नहीं। हम सांसारिक प्राणी हैं लौकिक जीवन जी रहे हैं हो सकता है कर्तव्यों का पालन करते हुए कभी क्रोध की आवश्यकता पड़े परन्तु उस क्रोध को उद्देग एवं आवेग का स्वरूप प्रदान न करें।

लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारी
क्रोध के पुरुष वचन बल, मुनिवर कहहि विचार

घर में सासुजी की अपेक्षा है बहु सेवा करे, बहुजी की अपेक्षा है सासुजी बच्चों का ध्यान रखें। दुकान पर सेठ जी की अपेक्षा है नौकर हर

समय कहा हुआ करे नौकरों को अपेक्षा सेठ जी से है कि वे हमें टोका-टोकी ना करे। आश्रमों में गुरुजी चाहते हैं चेला बही करे जो मैं कहूँ, चेला चाहता है मैं भी मनमानी करूँ। सभी एक दूसरे के विपरीत आचरण स्वयं करते हैं और फिर क्रोध करते हैं एक दूसरे पर। जब अनुकूलता चाही तभी तो दुख हुआ, वरना यदि व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहता है तो उसे अपने कर्तव्य का बोध भी होना ही चाहिए। आज के युग में क्रोध एवं प्रतिशोध इन दो तत्वों का जोर है। ये दो तत्व मनुष्य जीवन को नष्ट कर रहे हैं। आये दिन यही समाचार सुनते हैं फलां ने आत्महत्या करली फलां को जला दिया, मार दिया काट दिया ये क्या है? मरकर भी जाना कहाँ है शरीर जला कटा, पर आत्मा भटकती रही। वहाँ ऊपर कोई बुकिंग तो थी नहीं कि चले आओ। हमें यही रहना है इसी पृथ्वी पर, इसी संसार में फिर, इसी को हम अच्छा क्यों नहीं बनाते मानाकि युवाअवस्था में मन पर काबू करना बहुत कठिन होता है लेकिन घर में सुसंस्कारों से युवा पीढ़ी को सही मार्गदर्शन दिया जा सकता है।

किसी घर में खुशी का माहौल है लोग आये हुए हैं अचानक लड़के से कुछ गलती हो गयी, लगे पिताजी डाँटने सबके सामने लड़का भी जवान है, बुरा लग गया, मन में आक्रोश, बस फिर क्या था मुँह फुलाकर बैठ गया घर वाले गरज करते रहे लेकिन—

हम यहाँ यही कहना चाह रहे हैं कि गलती मनुष्य ही करता है पिता का फर्ज है लड़के को सुधारना लेकिन सबके सामने फटकार न लगाकर उसे एकान्त में भी कहा जा सकता है। तभी तो कहा गया है कि क्रोध के द्वारा शिक्षा नहीं जा सकती है। देखो तो सही ऐसा करके घर स्वर्ग बन जायेगा।

हमारे घर कोई विशिष्ट मेहमान आने वाले होते हैं तब हम घर का कूड़ा-कचरा साफ करते हैं धो पाँछ कर घर को साफ करते हैं कि कहीं आने वाला ये न कहे कि देखो कैसा घर है गन्दा। हमें मेहमान की इतनी परवाह और उस जगत नायक की कोई परवाह नहीं जो निरन्तर हमारे अन्तर्भन में

बैठे हैं वो ऐसे मलिन अन्तःकरण में कैसे रह सकते हैं जहाँ उद्वेग ही उद्वेग है। गन्दगी ही गन्दगी। साफ करना है मन को।

यह मनुष्य जीवन अमूल्य है। हमें अपनी पूर्णता का मार्ग तय करना है। और यदि प्रारम्भ से ही हम केवल तमोगुण के साथ चलेंगे तो हम अपने रास्ते की सबसे बड़ी बाधा खुद ही बनेंगे, क्रोध करने से मन में मलिनता होगी, दुख होगा, जीवन उद्देश्य हीन लगेगा। स्वास्थ्य खराब रहेगा। स्वयं तथा दूसरों के लिए भी हमारा मन व्यथित रहेगा। मन को व्यथित नहीं करना है।

सभी को पता है। जानते हैं सभी लोग कि क्रोध करना हानिकारक है। फिर कहते हैं क्या करें आ जाता है क्रोध, देखिये वास्तव में कोई व्यक्ति बुरा है ही नहीं, न ही वो बुरा बना रहना चाहता है बस परिस्थितियाँ ही ऐसी बनती हैं कि हम चाहकर भी कुछ नहीं कर सकते, ऐसे में हमें उन उपायों की सतत साधना करनी होगी जो क्रोध या उद्वेग को आने ही ना दें।

हमें यह आभास हमेशा रखना होगा कि हमें क्रोध करना ही नहीं है। इसके लिए संकल्पवान होना ही पड़ेगा। प्रभु के परमधाम को हमें पाना है परमात्मा को प्रसन्न हमें करना है तो प्रयत्न भी हमें ही करना होगा। जीवन में आने वाली प्रतिकूलता के लिए हम खुद को दोषी मानने के बजाए हर व्यक्ति, हर वस्तु को दोषी ठहराते हैं बस यही नज़रिया गलत है।

जो नजर में नज़ाकत हो तो,
ख़्वाब में भी हकीकत होगी।
तू एक नजर देख तो प्यार से,
हर दिल में मोहब्बत ही होगी ॥

हमें अपने पूर्वाग्रहों को दूर भगाना ही होगा। अपेक्षा रखनी ही नहीं एक स्वस्थ नजर सब पर डालकर तो देखें घर में भी बेटे ने ये नहीं किया वो नहीं किया ऐसा विचार मन से निकाल ही दें। फिर देखें आपके बिना कहें

वो सब काम कर देगा। थेटा आपका है आप थेटे के फिर तक़रार कैसी ।

एक महाराज जी थे बड़े सात्विक किसी से कोई लेना-देना नहीं अपने भजन में मगन पर जो दर्शनार्थी मन्दिर में आते महाराज से पूछते क्या चाहिए क्या लावे आपकी कोई सेवा कोई जरूरत महाराज कहते नहीं नहीं । कोई कहता आपके पांव दबावे, कोई कहता मालिश कर दें, महाराज ना ना के अस्तावा कोई उत्तर देते ही नहीं । पर भाई दर्शनार्थी तो परम भक्त ठहरे ना, रोज पूछना । एक दिन महाराज जी ने कहा चलो दबाओ मेरे पांव । लगा दबाने एक घन्टा दो घन्टा अब तो श्रीमानजी को घर की याद आयी बोले महाराज जाऊँ महाराज बोले जाता कहाँ पांव दबा । बेचारा ! दुखी हो गया और दूसरे दिन आया ही नहीं । यानी अपेक्षा ना करो तो देखो लोग स्वतः आपके पास आयेगें और अपेक्षा रखी तो लोग दूर भागने का ही प्रयास करेगें । अपेक्षा से दुख होता है । और दुख से क्रोध ।

“ स्वर्ग पगोतिया बीस पहले मारो रीस ”

सन्तों ने कहा पहले क्रोध को मारो । देखिये हम संसार में रहते हैं हमारे व्यवहार भी लौकिक हैं । अतः हमें अपने व्यवहार को ही व्यवस्थित करना होगा । सैद्धान्तिक बातें तो हम सुनते हैं क्रोध नहीं करना, पढ़ते हैं, क्रोध नहीं करना है पर सुनने या पढ़ने से क्या होता है हमें गुनना भी होगा हमें व्यवहार भी स्वयं को बदलना होगा । यह तो साधना है मेरे भाई एकदम से बदलाव नहीं होगा पर धीरे धीरे सब संभव है । नित्य साधना करनी होगी प्रयास करना होगा तभी संभव है । हमें इतना मजबूत बनना है कि कोई बात हमारी मन की शांति को भंग ना कर सके । जिससे भी मिले मुस्कान के सध मिले । एक बात बताऊँ क्रोध के समय चेहरे के 127 मांस पेशियाँ सिकुड़ती हैं और हंसते समय 17 मांस पेशियाँ खिलती हैं । हम यदि अपनी कामयाबी चाहते हैं तो दूसरों की कामयाबी के लिए भी उठने ही उत्साहित रहे । अपने आपको इतना बेहतर बना दें कि न कोई चिन्ता

गये। एक वर्ष बाद लौटकर आये। महाराज ने कहा जाओ श्रीमानजी नहा कर आओ नदी पर। श्रीमानजी चले नहाने-महाराज के आदेशानुसार इस बार हरिजन को कचरे की भरी टोकरी डालनी थी उन पर - सो जब वे नहा कर आये हरिजन कहीं छिपकर खड़ा था वहीं से उसने वो कचरे की टोकरी हास दी। आश्चर्य ! श्रीमान जी दौड़े उस की ओर पकड़ लिये उसके पांव और कहने लगे वाह भाई आपने तो इन दो वर्षों में मेरा सर्वांग परिवर्तित कर दिया मन की सारी मलिनता दूर कर दी। महाराज देख रहे थे उन्होंने कहा शिष्य अब तुम्हारी परीक्षा पूरी हुई अब पूर्ण दीक्षित हो।

कहने का अर्थ क्या है कि हम अपनी उग्रता पर स्वयं ही काबू पा सकते हैं एक बार, दो बार, चार बार छः बार प्रयत्न करना है। सफलता अवश्य मिलेगी इसके लिए जरूरी है लगातार सत्संग करना सत्संग की पुस्तकें पढ़ना आदत होनी चाहिए इनकी। सही मार्ग पर चलना ही एक साधक का ध्येय होना चाहिए।

कुछ सोपान, कुछ सीढ़ियां, तय करनी होगी अपने आप को निर्मल बनाने हेतु, संसार में रहते हुए जीवन को ऐसा बनाया जाये कि जिससे किसी को कोई पीडा न हो

- (1) जो परिस्थिति सामने उपस्थित हो उनका सामना सही ढंग से किया जावे अपने मन को दुखी नहीं करें।
- (2) अपने या दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा परिस्थिति जन्य हो एवं अनुकूल हो।
- (3) क्रोध आ ही जावे तो वहीं से उठ जायें।
- (4) रात्रि में शयन से पूर्व विचार करें कि आज कितनी बार ऊंची आवाज में चिल्ला कर बात करी।
- (5) अज्ञानता के वशीभूत हो कभी गलती हो भी जाती है तो, उस गलती का दोहराना नहीं ऐसी कोशिश करें।

और न ही कभी मायूसी हो। "खुदी को कर बुलन्द इतना कि खुदा भी आकर पूछे तुझसे बोल ए बन्दे तेरी रजा क्या है।" बस यही कि हमें आज में जीना है पूरे संकल्प के साथ इसका मतलब यह नहीं कि हमें आगे भी सुध नहीं लेनी है। आगे के परमलक्ष्य के लिए सच्चा साधक बनने के लिए हमारा आज स्वस्थ होना जरूरी है।

ज्ञान, विज्ञान बहु सुलभ, बहु सुलभ नीति धर्म।

संकल्प कर सको तुम, इच्छा अनुरूप कर्म ॥

हमारा जीवन एक संकल्प से शुरू हो बस ये करना ही है। एक प्रतिज्ञा स्वयं से कि चाहे जो हो इस परीक्षा को तो पास करना ही है।

एक दिन एक शिष्यजी एक महाराज के पास गये कि महाराज जी मुझे भी आपका चेला बनना है। मुझे दीक्षा दे दो। महाराज जी त्रिकालदर्शी थे वे जानते थे सब कुछ उन्होंने श्रीमानजी से कहा ठीक है देंगे दीक्षा। पहले जाओ नदी बह रही है आश्रम के पास स्नान आदि कर आओ श्रीमानजी चले नहाने। नहाकर कर आ रहे थे कि घाट पर सफाई करने वाले हरिजन ने झाड़ू शिष्य को लगा दी (झाड़ू लगाने का निर्देश महाराज जी हरिजन को दे चुके थे) शिष्य जी लगे चिल्लाने दिखायी नहीं देता अन्धा है क्या? और आये आश्रम में महाराज बाहर ही खड़े थे शिष्य का बड़बड़ाना जारी था बोले क्या हुआ? शिष्य ने वृत्तान्त सुना दिया महाराज बोले शिष्य अभी घर जाओ छः महीने मन को शान्त रखने का अभ्यास करो फिर देंगे दीक्षा। शिष्य थे मन के पक्के सो चले गये घर छः महीने बाद आये महाराज बोले जाओ नहा धो कर आओ श्रीमानजी चले नदी पर लौट रहे तो आश्रम की सड़क बूझ रहा था हरिजन, महाराज के आदेशानुसार खूब धूल उड़ाई उसने श्रीमानजी होने लगे लाल पीले ये क्या कर दिया तुने! पता नहीं मैं दीक्षा लेने जा रहा हूँ। महाराज देख रहे थे वहीं से कहा लौट जाओ अभी एक वर्ष ओर तपाओ खुद को, मन को वश में रखने और जवान पर काबू रखने का अभ्यास करो। श्रीमानजी भी जिद के पक्के चले

(6) अपने विवेक को कभी खत्म न होने दें ।

(7) क्रोध किसी को दुख पहुंचाने के लिए नहीं करें किसी को बात समझानी भी पड़े तो उसे ठीक रास्ते पर लाने के लिए बिना किसी द्वेष के बात बता दें ।

हमें अन्याय भी सहन नहीं करना है अन्याय के विरुद्ध भी हम अपनी आवाज उठाये अपनी रक्षा करें लेकिन मर्यादित होकर ।

बरसों पहले की बात है । सत्संग चल रहा था सभी श्रोता बैठे हुए गुरुजी की बात सुन रहे थे एक साँप भी चुपचाप बैठा सब सुन रहा था कथा समाप्त हुई सब चले गये साँप धीरे धीरे रेंगता हुआ गुरुजी के पास आया और बोला मैं भी सुधरना चाहता हूँ मैं चाहता हूँ क्रोध ना करुं विष ना उगलुं क्या करुं मुझे भी कुछ बताओ गुरुजी बोले ठीक है तू आज से ऐसा ही करेगा मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है । साँप चला गया जंगल में जहाँ वो रहता था । उस खेत में बालक रोज आते पहले तो वे लोग साँप को देखते ही डरा करते थे लेकिन जब से यह महसूस होने लगा कि साँप तो निश्चेतन पडा कुछ नहीं करता है । लगे उससे खेलने । कभी घास का गठहर बांधते तो कभी रस्साकशी का खेल खेलते साँप बेचारा चुपचाप सहन करता । एक दिन तो हट ही कर दी बच्चों ने एक शैतान गाय के सींगों में साँप को लपेट दिया गाय ने जंगली झाड़ियों में जाकर अपना सिर रगड़ना शुरू किया साँप का शरीर लहुलुहान हो गया बेचारा धरती पर गिर पडा । सायंकाल गुरुजी आये मार्ग में साँप पडा दिखायी दिया । बोले तेरी यह अवस्था कैसे हुई, क्या बताऊँ महाराज मुझसे कोई डरता नहीं, बालकों ने तो मेरी दुर्गति कर दी, गुरुजी बोले बेवकूफ तूने अपना स्वभाव बदलने की ठानी थी । अपने स्वाभाविक गुण फूफकार करना क्यों छोड दिया यही तो तेरा रक्षा कवच है साँप समझ गया ।

हमें भी अपनी रक्षा करनी हो तो अपने मानवोचित गुण नहीं भूलने चाहिए दुनिया से पलायन भी नहीं करना है । यहीं रहना है सहज होकर ।

रामदास जी महाराज टिब्बे के ऊपर बैठे थे। कबीर साहब प्रकट हुए बोले जहाजों में रह अर्थात् समुद्र किनारे क्या रहना जा समुद्र में लहरों के बीच जा उस जहाज में तभी तू समझेगा कि लहरों के थपेड़ों को जिन्हें ये जहाज कैसे सहन करता है। तूभी दुनिया के थपेड़ों को तभी समझेगा और सच्चा साधक बनेगा।

सन्त एकनाथ जी सराय में ठहरे थे। गोदावरी स्नान करने का नियम। सराय में एक यवन भी था। दुर्मना यवन को लगा इस आदमी को तपाया जाये। सन्त एकनाथ नहाकर आते वो उपर से कूड़ा गिरा देता। यह क्रम उसने 108 बार दोहराया सन्तजी चुप रहे अन्त में वो ही थका चरणों में गिर पड़ा। सन्त जी बोले भाई मैं तुझे ही धन्यवाद देता हूँ तेरी ही कारण आज गोदावरी मैया में 108 बार स्नान हो गया।

जो हमें क्रोधित करना चाहते हैं उनका तो उद्देश्य ही यही होता है कि हम उद्धेलित हों तो हम अप्रत्यक्ष रूप से उनके कार्य में भागीदार क्यों बनें, हमें तो प्रभु पद को प्राप्त करना है निर्मल अन्तःकरण में प्रभु को बिठाना है।

क्रोध आने पर भय, चिन्ता, ग्लानि उदासी आदि तत्व हमारे चारों ओर फैले रहेंगे। भय के कारण व्यक्ति का चरित्र गिरता है। भय से प्रसित व्यक्ति काल्पनिक चिन्ताओं में घिरा रहता है। हमें ही प्रयास करना है कि हम चिन्ता और भय को उसी प्रकार छोड़ दें, जैसे बीमारी में डाक्टर के कहने पर खाने की अमुक वस्तु को छोड़ते हैं मन में चिन्ता और भय के विचार आवे ही नहीं हमें अपने मन में प्रसन्नता, उत्साह, आशा विश्वास और साहस के विचारों को स्थान देना है। अखंडादानंद की प्राप्ति तभी संभव है यद्यपि ये कार्य मुश्किल है फिर भी प्रयास करना ही चाहिए कभी दुख हो तो उस समय हम अपने मन में ऐसी घटना का स्मरण करें जिससे हमें खुशी मिली हो प्रभु का स्मरण करें या अपने आपको ऐसे काम में लगा दें जहाँ व्यस्तता ही व्यस्तता है। तो क्रोध, भय, चिन्ता हमारे समीप ही नहीं आयेगें।

एक मात्र प्रभु के चरणों का सान्निध्य ही सभी प्रकार के भयों से मुक्त कर देता है अपनी इच्छा से भी अधिक फल प्रदान करता है जरा जाकर तो देखो उन चरणों के पास

भया त्रातुं दातुं फल मपि च वाञ्छा समधिकं,
शरण्ये लोकनां तव ही चरणावेव निपुणौ ।

जहाँ भय चिन्ता होगी वहाँ संशय और भटकन भी अवश्य होगी । कई लोग कहते हैं महाराज अन्धकार ही अन्धकार है, प्रकाश तो है ही नहीं प्रकाश होगा कैसे हमारी लाइट व्यवस्था जो सूचारू नहीं है । बिजली फिटिंग ठीक है, लाइन ठीक है, पर लट्टू पयूज है । जब लट्टू बदल दिया तो लाइन खराब हो गयी । भाई हमें अपने मन और मस्तिष्क रुपी बिजलीघर को ठीक रखना है । लाइन लट्टू तो चलते रहेंगे हमारा मनरूपी बिजलीघर स्वस्थ रहेगा तो प्रकाश ही प्रकाश स्वतः होगा ।

कभी संशय नहीं करे । संशय ही मनुष्य का प्रबल शत्रु है । ये महाराज तो ठीक नहीं है वे ठीक हैं । वे तो कुंडलनी जाग्रत करवाते हैं उनका तो आश्रम भी बहुत बड़ा है । उनके तो चेले भी बहुत हैं । क्या पता वहाँ जाने से हमारा कल्याण हो जावे । एक बार नहीं अनेकों बार यह भटकाव का मार्ग हम अपनाते हैं । अरे भाई "सहज पके सो मीठा" आपने एक मार्ग अपनाया है उस पर चलकर तो देखो । सीधा मार्ग है सनातन परम्परा का निर्वहण करना शास्त्रों के बताये मार्ग पर चलना । सन्त कहे उस राह को अपनाना । भटकाव से परम तत्व की प्राप्ति हो ही नहीं सकती । हमें जो मार्ग मिला है उसमें ही खुश होकर रहना है । जरूरी नहीं कि कठिनता का मार्ग ही अपनाए । वेदों एवं शास्त्रों का अध्ययन हर कोई कर नहीं सकता क्योंकि यह दुरुह है ये ऐसे मीठे पानी के कुएं हैं जिसमें से जल निकालने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है पर भाई सन्तवाणी तो तालाब है, जिसमें जब चाहो और डुबकी लगाकर नहा भी आओ और जल

भी घी लो तो संशय कैसा । अपने मार्ग पर हमें भरोसा करना है ।

बाजार में दुकानें तो बहुत हैं बाजार में । बड़े-बड़े A.C. लगे हुए शोरूम में । श्रीमान् जी को बड़ा शौक है ऐसी दुकानों में जाने का वे वहाँ एक बार चले गये । अन्दर की चकाचौंध से आँखें चुंधियां गयीं । 10 मिनट अन्दर रहे कि लाइट चली गयी अब तो श्रीमान जी का बुरा हाल रास्ता भी नहीं सूझ रहा था । बाहर आवें तो आवें कैसे जैसे जैसे बाहर निकले बाहर आवे तो चन्द्रमा की धवल चांदनी देखी । श्रीमानजी समझ गये दिखावट के धन्ये ज्यादा चलते नहीं । लाइट गयी तो अन्धकार ही अन्धकार है । हमें तो चन्दा के उजाले को ही स्वीकारना है वो सहज है । संशय हमारे प्रयत्नों की हत्या कर देता है । हम अपने काम को आधे मन से पूरा करते हैं और फल चाहते हैं पूरा । सबसे बड़े दुख की तो बात यह है कि हम सन्देहों को स्वयं पैदा करते हैं, ऊहापोह में खुद रहते हैं । फिर खालोंके खाली ही रहते हैं । यहां गये वो लिया, वहाँ गये वो लिया वास्तव में तो अन्दर कुछ गया ही नहीं क्योंकि स्थिति सन्देह की ही थी सन्देह से अस्तित्व तक डगमगाने लगता है । जब मन पटार है तो बगिया में बहार की उम्मीद कैसी ? संशय और सन्देह के नींव पर भक्ति की इमारत खड़ी करने का कोई औचित्य नहीं ।

शिष्य को कहा गुरुजी ने आरती करनी है, एक रुपये का घी ले आओ । शिष्य बोला किसमें लावें । गुरुजी ने एक "धूपेड़िया" उठाकर दे दिया वे चले गये बाजार दुकानदार बोला किसमें दूँ बोले इस बर्तन में दे दो । धूपेड़िये के एक तरफ खड्डा था वो भर दिया दुकानदार ने 50 पैसे बचे थे शिष्य बोला इसका भी घी दे दो दुकानदार बोला किसमें दूँ । शिष्य बोले एक तरफ और है खड्डा इसमें दे दो उन्होंने धूपेड़िया उल्टा कर दिया पहले वाला घी नीचे गिर गया । दूसरी तरफ भरा घी लिये चल दिये गुरुजी के पास । गुरु जी बोले ले लाये घी ! बोले 'हां' बोले दे दो । शिष्य बोला हम

दोनों तरफ भर कर घी लाये हैं। गुरु जी बोले दिखाओ बोले देखो 50 पैसे का इधर और 50 पैसे का उधर हाथ धुमा दिया। धूपेड़िया दोनों तरफ से खाली। तो महाराज संशय एवं सन्देह से जो भटकाव उत्पन्न हुआ है वह हमारे को "धूपेड़िया" बना देगा उसमें कुछ नहीं रहेगा खाली का खाली रहेगा मनुष्य, और यह रिक्तता हमारे अन्तःकरण को मलिन कर देगी। मलिन अन्तःकरण उस गन्दे दर्पण के समान है जिसमें कोई भी प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देता है। तो ऐसे मलिन अन्तःकरण से परमात्मा के श्री चरणों का साक्षात्कार कैसे होगा।

तमोगुणी प्रवृत्ति में एक दुर्गण यह भी है कि, मानव सदैव स्व चिन्ता ही करता है। इस दुष्प्रवृत्ति की पराकाष्ठा यह है कि मानव न तो अपना हित करता है ना ही दूसरों का हित करता है। ऐसे लोग परमात्मा के अस्तित्व को झूठलाते हैं। क्रोध और अविवेक में दिया जा रहा कष्ट चाहे किसी के प्रति भी क्यों न हो परमात्मा को कष्ट पहुँचाता ही है। ऐसा कौन सा स्वामी है जिसकी पूर्ति के लिए हमें अपने ही प्राणियों को सताना पड़े। परमात्मा की इच्छा के बिना तो पत्ता भी नहीं हिल सकता है फिर अविवेक का सहारा क्यों लिया जाए। अन्तःकरण ही पाप के मार्ग को क्यों अपनाया जाय। चाहे दिन की जिन्दगी है उसे सहजता से जिया जाये यह उपदेश नहीं है। यह एक वार्ता है, जिसे हर इन्सान समझता है।

एक सेठ जी थे सन्त उनके घर गये पूछा सेठ जी लक्ष्मी कितनी बोले 4000 रुपया है। बेटा कितने है। सेठ बोले एक, आपकी उम्र कितनी है बोले 12 वर्ष मुनीमजी पास बैठे हुए सुन रहे थे। रहा नहीं गया तो बीच में बोल-पड़े सन्त जी सेठ जी झूठ बोल रहे हैं! ये तो अरबों के मालिक हैं।

चार बेटे हैं इनके, और इनकी उम्र है 72 साल। सन्त जी बोले सेठ जी मुनीम जी क्या कह रहे हैं सेठ जी बोले बिल्कुल ठीक कह रहे हैं मुनीमजी। मैंने आज तक 4000 रुपये ही दान दिया है मेरा एक बेटा

सुपुत्र है और 12 वर्ष ही हुए है जब से मैंने भगवद् भजन शुरु किया है अब आप बताओ झूठ क्या है ।

वास्तव में जीवन और सम्पत्ति का वही भाग सार्वक है जो प्रभु के काम आए जो परोपकार के काम आए तभी तो नीतिशतक में कहा है ।

श्रौतं श्रुतेन न ही कुण्डलेन ।

दानेन पाणिर्न तु कंकणेन ॥

विभाति काया करुणा पराणां ।

परोपकारेण न तु चन्दनेन ॥

स्वार्थ साधना परमतत्व की साधना में सबसे बड़ी बाधा है हमें स्व. का परित्याग करना ही होगा । ममता को छोड़कर समता का ध्यान करना ही होगा । हमारा मन यद्यपि चंचल है परन्तु परमात्मा की इच्छा है कि हम अपने मन को सदैव वश में रखें मन पर शासन कर सकें । इसके लिए प्रयत्न करना होगा हमें निरन्तर प्रयत्न । हम हमारे मन में सुन्दर विचारों को ही स्थान दें । हमारा मन निर्दोष है उसमें सुख, शांति और आनंद ही विद्यमान रह सकते हैं और कुछ नहीं । हमें अपनी शक्ति को जाग्रत करना है । सदैव आनंद की प्राप्ति हो ऐसा प्रयत्न करना है । बार बार अभ्यास करना है धीरे धीरे असर होगा ही । हारना नहीं है ।

गुरुजी ने कहा चेलाजी नदी से पानी तो भरकर ले आओ । चेला बोला पात्र तो दे दो । गुरु जी ने बांस से बनी टोकरी चेले को दे दी । चेला विचार करने लगा इसमें पानी कैसे लाऊँ । उस समय चेले जवाब तलब नहीं करते थे । चला गया नदी किनारे, टोकरी जल में डुबाई, पानी नहीं आया, एक बार, दो बार 10 बार डुबाता रहा । हार धक्क कर लौट आया । तदास, चुपचाप एक तरफ़ खड़ा हो गया गुरुजी बोले पानी ले आये । सिर हिला दिया चेले ने । गुरुजी बोले क्यों, चेला बोला टोकरी में पानी कैसे लाऊँ । गुरुजी बोले पानी आ गया । बोला कैसे । गुरुजी बोले पानी में

बार-बार डुबने के कारण इस टोकरी का बांस नरम हो गया है। अब ये टूटेगा नहीं। तो भाई बार बार अभ्यास करने से, लगातार चिन्तन मन करने से व्यवहार में परिवर्तन जरूर आयेगा।

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

इन बाधक तत्वों का नाश अवश्य होगा, जो मानवता के प्रबल शत्रु हैं मनुष्य निरन्तर अभ्यास से इनका नाश अवश्य कर सकता है। और इनका नाश होगा तभी तो प्रभु पद में निष्ठ और विश्वास पैदा होगा। जीवन में प्रभु ही कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं, ऐसे भाव मन में लाने होंगे। भाव शुद्ध हो तो जीवन में उत्साह का संचरण अवश्य होगा। भावों की शुद्धता के लिए चित्त का शान्त होना आवश्यक है। चित्त की शान्ति के लिए मन की उहापोह को समाप्त करने का अभ्यास करना भी जरूरी है। मौन रहना इतना आवश्यक नहीं है जितना आवश्यक है शान्त रहना। भूत और भविष्य के चिन्तन से स्वयं को बचाना, क्योंकि भूत काल को सुधारना हमारे हाथ में नहीं और भविष्य हमारे अधिकार क्षेत्र से बाहर इसलिए मूर्त और नश्वर पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाए अमूर्त और अनश्वर को अपने विचारों का केन्द्र बनाये। हमें पानी का बुल बुला नहीं बनना है। हमें तो बनना है लहरें, जो अनंत सागर में विलीन हो जाती हैं। हमें तो वो मेघ शशि बनना है जिसका गन्तव्य भी सागर है और उद्गम भी सागर। अपने भावों को शब्दातीत बनाए तभी गुणातीत से साक्षात्कार होगा। और भाव शब्द से रहित तभी बनेंगे जब वे संसार के कुचक्रों से परे रहेंगे।

शुद्ध सात्त्विक प्रेम ही हर कार्य का आधार है

सत्य निष्ठा में निहित जीवन का सारा सार है।

न किसी के प्रति राग हो, न द्वेष, ना ही अपने स्वयं को कभी दुर्बल समझें। व्यक्ति किसी भी उच्च शिखर पर तभी पहुंच सकता है जब वो अपने मन के भावों को शुद्ध रखे। तभी तो सन्त कहते हैं कि शुद्ध चित्त में हरि रहते हैं। शुद्ध चित्त चरित्र की उज्ज्वलता को भी दर्शाता है।

निर्माणों के पावन युग में, हम चरित्र निर्माण न भूले ।

स्वार्थ साधना की आंधी में, वसुधा का कल्याण न भूलें ॥

अच्छा चरित्र अपने आप में एक पद है अच्छे चरित्र वाला व्यक्ति दृढ़ निश्चयी और आत्म विश्वासी होता है । यह मीठी जुबान अच्छे व्यवहार और नेक मुस्कान में निहित है ।

अच्छा चरित्र आत्म अनुशासन है । यह आत्मा सन्तुष्टि भी देता है । इसलिए हमें अपनी खोज खुद करनी है अपना निर्माण स्वतः करना है । कहते हैं ना कि हथौड़े की चोट शीशे को तोड़ देती है लेकिन लोहे पर पड़ते ही उसे पौलसद बना देती है । यह बिल्कुल सच है कि इन्सान स्वयं तय करे कि वह शीशे का बना है या लोहे का । इसके लिए आवश्यक है लगातार कोशिश करना । यह माना कि खुद को बेहतर बनाये रखने का सफर इतना आसान नहीं है । यह रुकावटों से भरा पड़ा है लेकिन हमें निरन्तर प्रयास ही तो करना है । प्रयास में ही सफलता छिपी है ।

भावों की शुद्धता ने ही तो शबरी को इतना दृढ़ बना दिया कि उसने अपने जूठे बैर तक खिला दिये परमात्मा को । विदुर पत्नी ने बेहिचक केले के छिलके खिलाये श्रीकृष्ण को, इनके चित्त शुद्ध थे, भाव विलक्षण थे तभी तो प्रभु ने स्वीकार किया इनका प्रसाद ।

“म्हारो बाळो भूखो छे प्रेम नो रे,
नथी देखे आचार-विचार, भाव देखे जठे बाळो जीम ले रे”

भावों की परिशुद्धता के लिए अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत होना भी आवश्यक है । अपने कर्मों का निर्वहण हमें करना ही है, आसक्ति रहित होकर । हम सांसारिक प्राणी हैं संसार से पलायन तो कर नहीं सकते हैं । जन्म लिया है तो कर्म तो करना ही है, कर्म से विरक्ति, भक्ति नहीं है । कर्म से नहीं कर्मफल से विरक्ति की जावे, जो कर्म आसक्ति में लिप्त नहीं करावे वही सच्चा कर्म है ।

यही बात है मेरे भाई कि

कोई ओढ़े शाल-दुशाला कसीदा कढ़ाए के
साधु ओढ़े काली कम्बल भस्मी लगाय के
तुलसी मगन भरे हरि गुण गायके.....

तन ढकने को वस्त्र आवश्यक है। लेकिन वस्त्रों को सजाने के लिए तन का सहारा लिया जावे ये कहाँ तक उचित है। यदि कर्म करना व्यवहारिक जगत की मांग है तो कर्म करते रहें।

यदि हम कर्म करेंगे है तो फल निश्चित हैं, इसकी इच्छा करने की आवश्यकता ही नहीं है। हमें यही करना है कि एक कार्य पूरा हुआ, लग गये दूसरे कार्य में, फल की प्रतीक्षा नहीं करें। प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक ही लक्ष्य होना चाहिए आनंद की प्राप्ति। आनंद की इच्छा मन में उठती रहे ताकि और ज्ञान के सन्तुलन से मन को नियंत्रित किया जाता रहे। इसलिए कि इच्छाएँ नियंत्रित रहें और हमारे कर्म संयमित रहें।

इसीलिए व्यक्ति को कर्म करने को कहा जाता है। कर्म ही धर्म है और कर्म करने का अभ्यास, उसकी निरन्तरता के द्वारा ही व्यक्ति के भावों में परिवर्तन आता है। यदि हम अपने जीवन का विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि हम जब भी कोई कर्म करते हैं तो है उस कार्य की सफलता असफलता के प्रति इतने आसक्त हो जाते हैं कि अपना विवेक तक खो देते हैं। विवेक हीनता ही पतन की ओर ले जाती है।

परीक्षा देने जाते हैं तो नकल करना प्रमुख कर्म हो गया अनुत्तीर्ण होने पर आत्महत्या करना प्रमुख कर्म हो गया। हमने अपने आपको इतना दुर्बल बना दिया है कि हम सोचने समझने की शक्ति भी खो बैठते हैं। कर्ममय जीवन में समष्टि भाव होना चाहिए। कर्म से हम अपने आत्मबल को बढ़ावें। कर्म को पूजा समझे। श्रीमद्भगवद्गीता का कर्म योग सर्वमान्य है। भगवद्गीता जीवन का आधार बने। सहज सासारिक प्राणी भी इस कर्म

सिद्धान्त से अपने जीवन को अवश्य उन्नत बना सकते हैं। मनुष्य थोड़े से भौतिक सुख के लिए अपने सजातीय बन्धु को भी धोखा देने में नहीं हिचकता है परन्तु यदि हम चाहें तो थोड़े से अभ्यास से हमारे व हमारे विचारों को विकसित कर सकते हैं कि भौतिक सुख स्वयंमेव हमारे पास आ जायेंगे। फिर ऐसा क्यों नहीं होता है ?

एक सज्जन ने कहा कि मुझे तो धन, सम्पत्ति बहुत ज्यादा मात्रा में चाहिए क्या करूं। तब किसी ने कहा कि लक्ष्मीजी का अनुष्ठान करो सज्जन ने उसी अनुसार लक्ष्मी का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। बरस बीत गये लक्ष्मी जी नहीं पधारी। उसने सोचा कि अब तो मैं साधु ही बन जाता हूं मेरा आधे से ज्यादा समय तो अनुष्ठान पूजा पाठ में ही बीत जाता है क्यों न इस कार्य को और आगे बढ़ाऊं। उसने ऐसा ही किया वो साधु बन गया त्याग दी गृहस्थी और फिर वही हुआ लक्ष्मीजी स्वयंमेव उसके पास आयीं पर तब उसे जरूरत थी ही नहीं उसने उस आसक्ति से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। दृढ़ता से विकास कर लिया था अपने कर्म का। केवल वही कर्म, जो मानवता और प्रकृति को मुक्त संकल्प द्वारा अर्पित करने के रूप में किया जाता है बन्धन का कारण नहीं होता है। प्रत्येक कर्म पवित्र है। एक मोची जूते अपनी लगन से तैयार करता है परन्तु एक प्राध्यापक उस जूते को पहन सकता है, तैयार नहीं कर सकता है अतः जो कार्य हमारे निकट है उसी को करने से हमारी कार्य शक्ति बढ़ती है। इस भौतिक चक्काचौंध में कार्य सन्तुष्टि ही आवश्यक है।

प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में कहीं ना कहीं विश्वास कर्तव्यनिष्ठ और सत्यनिष्ठ छिपी रहती है और उसी कारण वह जीवन में इतना सफल होता है। चाहे वो साधन का मार्ग हो या संसार का।

यद्यपि सफलता की राह में कुछ रुकावटें जरूर आती हैं लेकिन इन रुकावटों से पार निकलना ही सच्ची साधना होती है। सफलता को व्यक्ति

अपने भीतर महसूस करता है। सफलता का सफर तभी अच्छा होता है जब हमारे लक्ष्य और मूल्य विशिष्ट होते हैं।

इसीलिए कहा जाता है

1. जीवन गुजारो मत, जीओ (इस तरह)।
2. सिर्फ जीवन के सत्य को ही महसूस करो।
3. जीवन को देखो मत, उस पर गौर करो।
4. किताबें पढ़ो नहीं, उन्हें जीवन में उतारो।
5. मात्र किसी बात को सुनो मत, ध्यान से सुनो। और सुनने पर उसे समझने का प्रयास करो।

भक्तों के चरित्र को सुनते हैं पड़ते हैं पर कभी उसका अनुकरण करें उन्हें जीवन में अपनाए तो जीवन धन्य हो जायेगा।

एक बार राह में राहगीर ने देखा तीन व्यक्ति बैठे हुए पत्थर गड़ रहे हैं एक भव्य इमारत बन रही थी। राहगीर ने एक से पूछा भैया क्या कर रहे हो पहला बोला रो रहा हूँ तकदीर को, दूसरे से पूछा तो उसने जवाब दिया पत्थर गड़ रहा हूँ, जब तीसरे से पूछा उसने कहा भैया जी एक मन्दिर बन रहा है ठाकुरजी का, उसी की सेवा स्वरूप पत्थरों को तराश रहा हूँ।

कार्य तीनों कर रहे हैं पर विचारों की परिधि सबकी अलग सफलता केवल तीसरे के हाथ ही लगी, उसने कर्म के सही स्वरूप को जो पहचान लिया था। जीवन के संघर्ष दुखद या सुखद हो सकते हैं यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि हम इन संघर्षों का सामना कैसे करते हैं। जीवन में किसी भी कार्य की सफलता इस बात से नहीं मापी जा सकती है कि हम दूसरों के मुकाबले में कैसा कर रहे हैं बल्कि हमारी सफलता तो इस बात पर निर्भर करती है कि हम अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य कर रहे हैं या नहीं।

कामयाबी उसी को मिलती है जो हो अपनी लगन के दीवाने
कामयाबी कदम चूमती है जो राहों में रुकना न जाने ॥

हम जिस स्थिति के योग्य हैं वहीं हमें मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार ही पाता है यदि कोई धनी व्यक्ति दुष्ट है तो कुछ तो ऐसे गुण होंगे ही उसमें जिससे वह धनी बना प्रभु की इच्छा के बिना पता तक नहीं हिलता है और हम प्रभु के ही हैं। अतः हमें हमारी योग्यता के अनुसार ही कार्य करना होगा। हम सोच लें कि हमें इस दुनिया में आसक्ति रहित होकर कर्म करना है तो चाहे जो हो हमारा लक्ष्य हम पा ही लेंगे।

लक्ष्य हो ऊँचा हमारा, हो समर्पित जीवन सारा।

चैतन्य चिदानन्द की वंदना से राह में फैले उजियारा ॥

निरन्तर प्रभु चरणों की वंदना। हमारे इस फैसले को कोई रोक नहीं सकता है हमारा लक्ष्य ही हमारी प्रेरणा बनता है। हम दृढ़ निश्चय करें तो सही।

साफ मौसम में बहुत सी नावें हर दिशा में चलती दिखती हैं। ऐसा क्यों? हालांकि हवा एक ही दिशा में चल रही है फिर नावें अलग अलग दिशा में क्यों? यह इस बात पर निर्भर करता है कि नावों में पाल किस तरह से लगाये गये हैं और यह फैसला नाविक करता है। यही बात हमारे जीवन में भी लागू होती है हम हवा का रुख तो नहीं चुन सकते पर पाल तो अपनी मर्जी से लगा सकते हैं। इस लिए भैया जी हमें अपनी जीवन रूपी नाव को भक्ति की पाल लगाकर ही कर्म रूपी खैवया बन कर पार करना है।

हमें अपने कर्तृत्वाभिमान से मुक्त होना होगा। भैयाजी जब कारण भी प्रभु है कार्य भी प्रभु है, परिणाम भी प्रभु है बीच में "मैं" कहाँ से आ रहा है हमें तो अपने कर्तव्यों की अनुपालना करनी है प्रभु की सेवा करनी है।

“होड़ सोड़ जो राम रचि राखा ।”

फिर हम तर्क और कुतर्कों के चक्र में क्यों पड़ें। राम जी जो अच्छा करेंगे अच्छा ही करेंगे।

जिस तरह कोई व्यक्ति डिक्शनरी (शब्दकोश) के ऊपर बैठे और कहे कि मुझे तो सारे शब्द याद हैं ऐसा नहीं हो सकता है हमें याद करने का कर्म तो करना ही है।

शरीर का कर्म है भोजन करना। उससे रस, रक्त आदि सप्त धातुओं का निर्माण करना एवं उच्छिष्ट का त्याग करना है। यह सारी प्रक्रिया उदर में स्वतः समायोजित है हमारा कर्म तो सिर्फ भोजन करना है। उसी तरीके से दैनिक जीवन में हमारा कर्तव्य है व्यवसाय और परम्पराओं के अनुरूप शास्त्र सम्मत विधि से जीवनयापन करना। यानी कर्म ऐसे हो जो शास्त्रों ने आदिष्ट किये हैं। शास्त्रों से विपरीत कर्म विकर्म हैं जो पतन की ओर ले जाते हैं। यद्यपि भोजन करना हमारा कर्म है परन्तु शरीर विज्ञान के अनुसार जो अपेक्षित है उचित स्वरूप है उसी को ग्रहण करें तो पेट स्वस्थ रहेगा अन्यथा तो भाई हानि हम जानते ही हैं। उसी प्रकार जो आचरण शास्त्र विरुद्ध होंगे, उसकी हानि हम ही उठावेंगे, भले ही वो क्षणिक आनंद दे जायें

परन्तु उस आनंद द्वारा उत्पन्न विकार मन की सहजता को हर लेते हैं और नतीजा होता है चिर स्थायी अशांति। हम तो स्थायी आनंद के पक्षिक हैं। फिर अशांति के अनुयायी क्यों बनें।

ज्ञान के आधार पर ही माया रूपी कर्म चल रहा है। जो अविद्या रूपी कर्म में दिन-रात लगे रहते हैं ईश्वर चिन्तन जिनके भाव में नहीं है वे अंधकार रूपी तम में ही डूबे रहते हैं। वे केवल इस अहंकार से ईश्वर को भजते हैं कि कर्म तो करना ही नहीं है नरक गामी होते हैं। यह बात बिल्कुल सत्य है कर्म चाहे पुण्यमय हो और चाहे पापमय बन्धन ही देता है। शास्त्र यहाँ तक कहते हैं कि पुण्य रूपी कर्म जब क्षीण हो जाते हैं, तब स्वर्ग से विच्युति हो जाती है।

“क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोके विशन्ति”। पुण्य रुपी कर्म से लौकिक वैभव की तो खूब वृद्धि हो जाती है। पुण्य कर्म यदि किसी कामना के बशीभूत होकर किए जायें तो नाम, यश, कीर्ति तो खूब बढ़ेगी और यह लालसा प्राणी के मन में भी बनी रहेगी। जो भी कर्म लालसा या वासना के रूप में हमारी स्मृति में रह जाता है वही बन्धन हो गया। कर्म तो क्षणिक है भाई, चाहे वो पुण्य के लिए किया गया हो या वैसे ही हो जाता है पाप के लिए। कर्म तो समाप्त हो गया किन्तु अपना संस्कार पीछे छोड़ गया। अतः हमें तो यही मानकर चलना होगा कि करने वाला भी वही पुरुषोत्तम है और कराने वाला भी वही हम तो केवल निमित्त मात्र हैं।

रंगमंच या सिनेमा में जो भी पात्र काम करते हैं वे निर्देशक के कहे अनुसार करते हैं, उनका रोना, हंसना, उठना, बैठना सब निर्देशक के हाथ में ही है। तो भाई हमारा भी वही निर्देशक है। हम तो पात्र हैं जो निर्देशक निर्देश दे, वही शास्त्र सम्मत कर्म हमें करने चाहिए। कर्म की सफलता आस्था और विश्वास पर टिकी हुई है।

मनुष्य के हाथ में तो कर्म ही एक मात्र साधन है। इसमें निष्ठा और विश्वास का योग होगा, तभी बुद्धि भी उसी तरह काम करेगी। इसके लिए हमें जागरूक रहना होगा। हमने कर्म के विषय में बहुत पढ़ा, बहुत सुना लेकिन क्षणिक स्मृति ही रही उसकी, दृढ़ संकल्प द्वारा हमें अपनी स्मृति को तीक्ष्ण करना होगा तभी जीवन की सार्थकता सामने होगी अन्यथा कर्म के बन्धन हम बांधते चले जायेंगे। पुनः जीवन-मरण के चक्कर में उलझे ही रहेंगे। अतः आस्था के नए आयाम तलाशने की जरूरत नहीं है आस्था हमारे भीतर ही है, हमारे जीवन का मूल आधार है आस्था।

आस्था और विश्वास भी एक सोपान है प्रभु के चरणों तक पहुँचने का। सर्वप्रथम प्रश्न यह उठता है कि आस्था किसमें? स्वयं में, ईश्वर में, धर्म में, समाज में। किसी में भी हो, सभी की अभिव्यक्ति स्वयं के साथ ही